

# आधुनिकता के आइनें में दलित अवमानना के आयाम



## रुचि सिंह

प्रवक्ता,  
राजनीति विज्ञान विभाग,  
एस.एस.डी.पी.सी. गर्ल्स डिग्री  
कॉलेज, रुड़की, हरिद्वार

### सारांश

अवमानना की धारणा में किसी सृजनात्मकता की तलाश जैसे तो काफी अरुचिकर है लेकिन एक स्तर पर अवमानना अपने शिकार को एक ऐसी आत्म-परिभाषा अपनाने के लिए प्रोत्साहित करती है जो इतिहास में से निकलती है और जिसकी रचना बजरिये भाषा, रूपक और क्रियाशीलता के औजारों से होती है। ये संदर्भ कुछ नये अर्थों का सृजन करते हैं जिनसे अवमानना के शिकार न केवल यह जान पाते हैं कि वे क्या हैं बल्कि उन्हें यह भी एहसास होता है कि वे क्या नहीं हैं। ये नये अर्थ प्रतिरोध के लिए उत्पीड़ित की शक्ति के साथ-साथ उसके ऊपर लगाये गये प्रतिबंधों अर्थात् उत्पीड़क द्वारा स्थापित प्रबल वर्चस्व की समझ पैदा करते हैं। अवमानना का यह सृजनात्मक पहलू दलितों के कल्पनाजगत में प्रतिरोध के अंक के रूप में मौजूद रहता है।

दलित साहित्य के कुछ विद्वानों ने भी अवमानना की अवधारणा का सृजनात्मक तात्पर्य निकालने की चेष्टा की है। दलित साहित्य के एक परोधा बाबूराव बागुल ने अपनी मशहूर कहानी **मरन सस्ता होता है**, में अवमानना को एक ऐसी चेतना के रूप में परिभाषित किया है जिसकी धार तलवार के समान होती है। बागुल अछूत जैसे बेहद अवमाननाकारी शब्द को एक बगावती तेवर दे कर ऊँची जातियों द्वारा अपनायी जाने वाली पवित्रता-अपवित्रता की धारणाओं को चुनौती देते नजर आते हैं। काफी प्रभावशाली रूपकों की मदद से वे अछूत की तुलना उस प्रखर सूर्य से करते हैं जिसे कोई छू नहीं सकता। दक्षिण भारत के कुछ दलित व्याख्याताओं ने भी अछूत को बिजली के नंगे तार की संज्ञा दी है जिसे छूना घातक हो सकता है। इन दोनों मिसालों में अवमानना की सृजनात्मक धारणा दलितों के प्रखर सौंदर्यशास्त्र के रूप में उभरती है। इसी जगह सवाल उठता है कि अवमानना का यह सृजनात्मक पहलू किसी तरह के विरक्त भाव से तो प्रभावित नहीं है।

**मुख्य शब्द** : अवमानना, दलित, उत्पीड़ित, जातिगत, अराजकतावादी, अस्पृश्यता, हृदयविदारक

### प्रस्तावना

अवमानना को समझने में उदारवादी और मार्क्सवादी, दोनों नजरिये ही नाकाम रहे हैं। नित्य प्रति अवमानना के दौर से गुजरने वाले दलितों और महिलाओं के लिये अवमानना उनकी आत्म परिभाषा में बदल जाती है जिसके जरिये वे जान पाते हैं कि वे क्या हैं और क्या नहीं हैं। अवमानना उत्पीड़ित की शक्ति बन जाती है। गांव से लेकर शहर तक और खेत से लेकर कारखानों तक दलितों की अवमानना का यह क्रम लोकतान्त्रिक-उदारवादी राज्य में कानूनी रूप से प्रतिबन्धित होते हुये भी परिवर्तित रूपों में जारी रहता है। दफ्तर में काम वाले वाला दलित ही नहीं, अछूत सम्प्रदाय से आया हुआ मुख्यमंत्री भी पाता है कि लोकतंत्र और सत्ता में ऊँचे स्तर पर भागीदारी करने के बाद भी उसके लिये मानवीय सम्बन्धों की संहिता अभी बदली नहीं है। अपमान की कूटभाषा का जन्म हो चुका है और समस्या यह है कि अभिजन बन चुके दलित भी अपने सजातीय बन्धुओं के लिये इसी भाषा का इस्तेमाल करते हुये देखे जाते हैं।<sup>1</sup>

भारतीय बुद्धि अपमान करने की नयी-नयी किस्मों के ईजाद में खास तौर से माहिर है इस समाज में युक्ति के लिये किये जाने वाले संघर्षों को हर कदम पर अवमानना के विभिन्न रूपों और तरीकों का सामना करना पड़ता है। समस्या यह है कि उदारतावादी चिन्तन के दायरे में गरिमा और परस्पर सम्मान के सवाल को या तो केवल विधिसम्मत निजी अधिकारों के सन्दर्भ में समझा गया है या फिर उसे एक मनोवैज्ञानिक परिघटना की संज्ञा दी गयी है।<sup>2</sup> दूसरी तरफ मार्क्सवादी दृष्टि भी आत्म सम्मान और गरिमा के मसले पर यह दृष्टि अपर्याप्त साबित होती रही है।<sup>3</sup> चूंकि सामाजिक सम्बन्ध जातिगत ऊँच-नीच से बुरी तरह प्रभावित है इसलिए भारत में किसी भी मानवाधिकार आन्दोलन के लिये जाति उत्पीड़न का विरोध करना एक अनिवार्य प्रस्थान बिन्दु माना जाता है।<sup>4</sup> इस सम्बन्ध में यह उल्लेख करना जरूरी है कि मार्क्सवादी दायरों में कुछ ऐसे

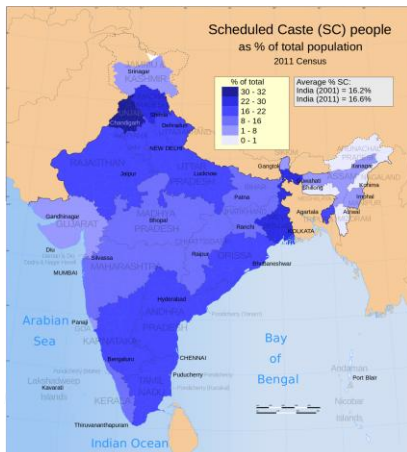
संवेदनशील विद्वानों और कार्यकर्ताओं का तबका भी है जो गरिमा अथवा अवमानना की उपेक्षित श्रेणियों पर ध्यान देने की कोशिश करते रहे हैं।<sup>5</sup> मानवाधिकार सम्बन्धी विमर्श के इस मोड़ पर कुछ दलित बहुजन विद्वानों ने भी जाति के यथार्थ पर एक नया परिप्रेक्ष्य प्रस्तावित करने की पहल की है।<sup>6</sup>

#### उद्देश्य

1. जातिगत ऊँच-नीच से बुरी तरह प्रभावित सामाजिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालना।
2. नित्य प्रति अवमानना के दौर से गुजरने वाले दलितों की स्थिति से अवगत कराना।
3. प्रत्येक जाति का परम्परा के आधार पर जाति का निर्धारण करना एवम् उचित अथवा अनुचित पर प्रकाश डालना।
4. आधुनिक काल में दलितों द्वारा बौद्ध धर्म को स्वीकार करने के कारणों को जानना।

#### अवमानना का तात्पर्य

अवमानना की विभिन्न अवधारणायें प्रचलित हैं। अविशाई मार्गलिट की रचना "डीसेंट सोसाइटी में अवमानना के कई अर्थ सामने आते हैं। अराजकतावादी नजरिये से अवमानना को देखते हुए वे तर्क देते हैं कि किसी भी तरह के प्राधिकार या कृपा-भाव के प्रति अधीनता अवमानना का पर्याय होती है।<sup>7</sup> इस धारणा के मुताबिक कृपालु होने के किसी भी रूप या कोशिश को अवमानना समझा जाना चाहिए। इस परिभाषा के तहत आत्म-सम्मान का प्रश्न भारी महत्व ग्रहण कर लेता है। अधिकार और अवमानना के बीच सूत्रों की स्थापना करते हुये मार्गलिट का तर्क है कि अधिकारों की मांग करने की अक्षमता भी एक तरह की अवमानना है।<sup>8</sup> यह कटु सत्य है कि भारतीय समाज में जातिभेद है और समाज के वंचित वर्ग के साथ भेदभाव अभी पूरी तरह खत्म नहीं हो पाया है।<sup>9</sup> हमारे समाज में अनसूचित जाति के लोगों को अस्पृश्यता के नाम पर मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है। इन लोगों पर सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक निर्याग्यतायें लाद दी गयी जिनके कारण इन्हें निम्न स्तर का जीवन बिताना पड़ा। परन्तु भारतीय संविधान निर्माताओं को इस समस्या का पूर्ण आभास था, इसलिए संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों में सामाजिक एवं आर्थिक विषमता से मुक्त समाज के निर्माण में समानता के अधिकार का विशिष्ट महत्व है।<sup>10</sup>



#### उ० प्र० में कुछ अनुसूचित जातियों का विवरण

जाति	जनसंख्या	टनूसूचित जाति जनसंख्या का प्रतिशत
अहारिया	18,678	.05 प्रतिशत
बाधिक	11,142	.03 प्रतिशत
बढई	11,721	.03 प्रतिशत
बेघा	26,476	.08 प्रतिशत
बाल्मीकि	11,66,383	3.3 प्रतिशत
बंगाली	18,660	.05 प्रतिशत
बनमानस	18,730	.05 प्रतिशत
बंसफोर	57,025	.2 प्रतिशत
बारवार	13,326	.04 प्रतिशत
बवारिया	6,054	.02 प्रतिशत
भान्टू	8,184	.02 प्रतिशत
चमार	1,98,03,106	56 प्रतिशत
चेरो	32,405	.1 प्रतिशत
पासी	55,97,002	16 प्रतिशत
तुराहा	25,649	.08 प्रतिशत
डोमार	18,053	.05 प्रतिशत
हरी	1,719	.005 प्रतिशत
करवाल	16,264	.05 प्रतिशत
खैराहा	3,047	.008 प्रतिशत
नट	1,58,379	.05 प्रतिशत

स्त्रोत:- (www.censusindia.gov.in)

#### भारतीय राज्य और दलितों की अवमानना

लोकतान्त्रिक उदारतावादी राज्य से यह मांग वैधानिक रूप से की जा सकती है कि वह अपने राजतंत्र के हर व्यक्ति को समान आदर और अवसर मुहैया कराये, भले ही वह व्यक्ति अल्पसंख्यक समुदाय का हो या बहुसंख्यक समुदाय का। राज्य अपने प्राधिकार का विस्तार करते हुये अपने किसी भी सदस्य को पक्षगत या उत्पीड़न से बचाने के लिये सामाजिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। राज्य और उसकी संस्थागत ताकत के साथ-साथ आत्म सम्मान के लिये चलाये जाने वाले आन्दोलनों की कहीं अधिक महत्वपूर्ण उपस्थिति के कारण उत्पीड़क अवमानना के छिपे हुये रूपों का इस्तेमाल करने लगे हैं। उदा० साठ के दशक में आन्ध्र प्रदेश के दलित मुख्यमंत्री का अपमान करने के लिए ऊँची जाति के अफसर और मंत्री दहरे अर्थो वाली कटाक्षपूर्ण भाषा का इस्तेमाल करते थे। दलित मुख्यमंत्री को वे अक्सर "M.M." के नाम से सम्बोधित करते थे। मुख्यमंत्री के पूछने पर उनकी सफाई होती थी कि "एम एम" से उनका मतलब है "मिस्टर मिनिस्टर" जो चार्ल्स टेलर के मुताबिक अधिक गरिमामय संबोधन भी माना जा सकता था लेकिन इस "एम एम" का तेलगू भाषा में एक और अर्थ "मिस्टर माला" निकलता था। आन्ध्र प्रदेश की एक दलित जाति होती है। "एम एम" का एक अर्थ जारज सन्तान भी निकलता है। यह उदाहरण बताता है कि मानवीय सम्बन्धों की संहिता को बदलने के लिये किये जाने वाले प्रगतिकांक्षी प्रयासों को नाकाम करने के लिये कैसी-कैसी चालाकियों का इस्तेमाल किया जाता रहा है।



शूद्र का ही बना रहेगा । यू0 एन0 ओ0 में 'वीटो' का अधिकार प्राप्त सवर्ण है । शेष सब शूद्र । हमारे देश स तथा कथित ऊँची जाति का छात्र विशेष पढ़ने जाता है तो गोरो के होटल में झूठे बर्तन भी धो लेता है । अपना खर्च चलाने को और अपने ही देश में श्रम से भागने की हर सम्भव कोशिश करता है । नये हिन्दुस्तान में कमेरों और लुटेरोंकी दो जातियाँ नहीं होंगी । नया हिन्दुस्तान पूरी दुनिया में जहाँ भी क्षमता के लिये, अन्याय के खिलाफ संघर्ष चल रहे हैं, उनसे जुड़ेगा, उनकी यथाशक्ति मदद करेगा ।

पुराणमित्येव न साधुसर्वभ,  
नवचानवद्यम, नवमित्येवेहि  
क्षण-क्षणे यत्रवतामुपैति,  
तदैव रूपम् रमणीययतायः ।

सभी पुरातन सही नहीं हैं, सभी नवीन सही नहीं हैं । पुरातन और नवीन के उत्तर तत्वों का समन्वय करके क्षण-क्षण में नवीन बनना और बनाना ही रमणीयता है ।<sup>14</sup>

रूँ तो यह कार्य आज के धर्मोचार्यों का है जैसे शंकराचार्य, संत आदि, परन्तु यदि वे किन्ही कारणों से यह कार्य नहीं कर पा रहे हैं तो जागरूक जनता को यह स्वयं करना होगा । प्रज्ञा से धुन्ध हटानी ही होगी ।

जाति मुख्यतः जन्म के आधार पर सामाजिक संस्तरण और खण्ड-विभाजन की वह गतिशील समस्या है जो खाने, पीने, विवाह और सामाजिक सहवासों के संबंधों में अनेक या कुछ प्रतिबन्धनों को अपने सदस्यों पर लागू करती है । जाति व्यवस्था एक गतिशील समस्या है पर लादे गए प्रतिबन्ध अथवा विभिन्न जातियों की सामाजिक आर धार्मिक नियोग्यताएँ और विशेषाधिकार भी अन्तिम नहीं है । समय की गति के साथ-साथ इनमें भी परिवर्तन होता रहता है और हुआ भी है । उसी प्रकार धन प्रतिष्ठा या सत्ता, विशेषकर राजनैतिक सत्ता के आधार पर भी जाति के परंपरागत स्वरूप में बदलाव आ सकता है ।



TRUTH ABOUT  
DALITS  
CASTE SYSTEM AND UNTOUCHABILITY  
Oliver D'Souza

सन्दर्भ में यह भी स्मरणीय है कि जाति व्यवस्था समाज का खण्डात्मक विभाजन का ही नहीं अपितु एकीकृत ढांचे का भी काम करती है । यही कारण है कि आधुनिक भारत में जाति व्यवस्था अपनी परंपरागत प्रकार्यों का भले ही न करती हो पर अन्य अनेक नई भूमिकाओं को निभाती है । जाति-प्रथा निर्धारित विभिन्न खण्डों में ऊँच-नीच का एक संस्तरण या चढ़ाव-उतार होता है और इसमें, परंपराओं के अनुसार प्रत्येक जाति का स्थान जनम पर आधारित होता है । इस संस्तरण में सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मणों की स्थिति होती है । इसके बाद क्षत्रिय वैश्य और शूद्र का स्थान क्रमशः निम्न होता गया है । यह संस्तरण मुख्यतः कुछ स्थिर व दृढ़ है और इसी कारण साधारणतया इस संस्तरण में ऊँचे स्तर पर उठना असंभव तो नहीं पर कठिन अवश्य लगता है ।

छुआछूत के आधार पर विभिन्न जातियों को सामाजिक और धार्मिक योग्यता या विशेषाधिकार प्रदान करना ह । इस संबंध में सबसे अधिक विशेषाधिकार ब्राह्मणों को प्राप्त है और सबसे अधिक नियोग्यतायें अछूतों के लिए है । दक्षिण भारत में अछूतों की अवस्था वास्तव में दयनीय थी । वे उच्च जाति के लोगो को छना तो दूर उनको अपनी शकल भी नहीं दिखा सकते थे । ट्रापलकोर, पूना आदि स्थानों में अनेक सड़कों पर अछूतों को चलने की आज्ञा न थी । उसी प्रकार उनको न तो मन्दिरा में प्रवेश का अधिकार था न स्कूल में पढ़ने का और न ही उन कुओं और तालाबों में पानी भरने का जिनको की उच्च जाति के लोग व्यवहार में लाते थे । गांवों में तो इस प्रकार के प्रतिबन्ध और भी कठोर होने थे और अछूतों को किसी भी प्रकार का सामाजिक तथा धार्मिक अधिकार प्राप्त नहीं होता था । गांवों में अछूतों को बस्ती से बाहर रहना पड़ता था ।



निष्कर्ष

प्रायः प्रत्येक जाति कुछ पेशों का अपना परंपरागत पेशा मानती है और उसे छोड़ना उचित नहीं समझा जाता था । इस प्रकार ब्राह्मण पुरोहित के काम को और चमार जूते बनाने के काम को ही करना ठीक समझते हैं । साधारणतया ऐसा ही होता है और जाति-प्रथा का नियम भी यही है । साथ-ही-साथ केवल जातियों का ही नहीं बल्कि उनके द्वारा किए जाने वाले पेशों में भी ऊँच-नीच होती है । जिन पेशों में एक व्यक्ति को अपवित्र वस्तुओं के सम्पर्क में आना होता है, उन पेशों को नीचा माना जाता है । अपवित्र वस्तुओं में भी एक ऊँच-नीच का संस्तरण है। मल-मूत्र सबसे अधिक अपवित्र है । इसी प्रकार चमड़े का काम और गन्दे कपड़े धोने का काम दो पृथक श्रेणी के व्यक्तियों का होता है ।

इनके विपरीत धर्म से संबंधित समस्त कार्य पर पवित्र माने जाते हैं और यही कारण है कि इन कार्यों को करने वाले ब्राह्मणों की स्थिति जातीय संस्तरण में 'सर्वमान्य रूप में' सबसे ऊपर है। फिर भी कुछ ऐसे पेशे हैं जिन्हें प्रत्येक जाति के सदस्य चुन सकते हैं, जैसे—खेती, व्यापार, सना की नौकरी आदि, ने केवल जाति के व्यक्ति भी अपनी जाति के व्यक्तियों के अन्य पेशों को चुनने से रोकते हैं। अपितु अन्य जाति के व्यक्ति भी अनेक प्रकार से रोकने का प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु मुगल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् पेशा संबंधी प्रतिबन्ध दिन-प्रतिदिन दुर्बल ही होता गया और जैसा कि थेन्स का कथन है, 'जाति का पेशा परंपरागत होता है, परन्तु यह किसी भी अर्थ तो आवश्यक नहीं है कि उसी के द्वारा सब या अधिकतर जातियाँ आज अपनी जाविका का निर्वाह करती हैं। यही कारण है कि मुगल काल से यह देखा गया है कि ब्राह्मणों ने अपने परंपरागत पेशों के अतिरिक्त अन्य पेशों को भी चुनना शुरू कर दिया था। उत्तर प्रदेश के कान्यकुब्ज ब्राह्मणों ने सेना में नौकरी और खेती का काम प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु इस सम्बंध में यह उल्लेखनीय है कि कारीगर जातियों ने अपनी जाति के पेशों की रक्षा अधिक दृढ़ता से की है।

#### संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अभय कुमार दुबे, आधुनिकता के आइनें में दलित, वाणी प्रकाशन, विकासशील समाज अध्ययन पीठ, 29, राजपुर रोड, दिल्ली-110056, पृष्ठ सं0 88
2. अविशाई मार्गलिट, द डीसेंट सोसाइटी, हावर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, हावर्ड, 1996

3. के0 बालगोपाल, इंडियन जनरल ऑफ ह्यूमन राइट्स, जनवरी 1997, हैदराबाद विश्वविद्यालय, पृ0 100
4. उपरोक्त
5. जवीद आलम, "पब्लिक स्फेयर एंड डेमोक्रेटिक गवर्नेन्स इन कटेम्प्ररी इण्डिया" मल्टीकल्चरिज्म, लिबरलिज्म एंड डेमोक्रेसी, ऑक्सफोर्ड, दिल्ली 1999, पृ0 324
6. कांचा एलेय्या, इंडियन जनरल ऑफ ह्यूमन राइट्स पूर्वोद्धत, पृ0 151
7. पूर्वोद्धत मार्गलिट, पृ0 31
8. उपरोक्त पृ0 36
9. दैनिक जागरण, 9 फरवरी 2016, पृष्ठ सं0 05, देहरादून संस्करण
10. डा0 आलोक कुमार कश्यप, अनुसूचित जातियाँ एवं ग्रामीण विकास कार्यक्रम, आर्या पब्लिकेशन, दिल्ली 110093, पृ0 256
11. अभय कुमार दुबे, आधुनिकता के आइनें में दलित, वाणी प्रकाशन, विकासशील समाज अध्ययन पीठ, 29, राजपुर रोड, दिल्ली-110056, पृष्ठ सं0 97
12. प्रेमशंकर तिवारी, समाज का बदलता स्वरूप, सुमित एन्टरप्राइजेज, नई दिल्ली 110002, पृष्ठ सं0 209
13. प्रतियोगिता दर्पण (अतिरिक्तांक)परीक्षोपयोगी सीरीज-22, नई दिल्ली।
14. डा0 अतुल कृष्ण, जाति प्रथा से पलायन, कल्पाज पब्लिकेशन, दिल्ली 110052, पृ0 179